Shodh International: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Vol. 2, Issue 1 - 2017

भारतीय सांस्कृतिक परिवर्तन एवं साहित्य

डॉ निधि कश्यप*

प्रस्तावना

गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के एक गीत का भाव है- यहां आर्य भी आए, अनार्य भी आए, द्रविड़, चीन, शक, हूण, पठान, मुग़ल सभी यहां आए लेकिन कोई भी अलग नहीं रहा, सब इस महासागर मे विलीन होकर एक हो गये।

सचमुच भारत एक महासागर है, भारतीय संस्कृति महासागर है, विश्व की तमाम संस्कृतियां आकर इसमें समाहित हो गई हैं। आज जिसे आर्य संस्कृति, हिन्दू संस्कृति आदि नामों से जाना जाता है, वह वस्तुतः भारतीय संस्कृति है जिसकी अजग्र धारा सिंधु घाटी की सभ्यता, प्राग्वैदिक और वैदिक संस्कृति से झरती हुई नवोन्मेषकाल तक बहती रही है। अनेका अनेक धर्मों, सभ्यताओं और संस्कृतियों को अपने में समाहित किये हुए इस भारतीय संस्कृति को सामासिक संस्कृति ही कहना उचित है। संस्कृति की सामासिकता का तात्पर्य यह है कि इसमें ऐसे अनेक मतों को प्रश्रय मिला है, जो परस्पर 'नकुल-सर्प संबंध' के लिए प्रसिद्ध रहे हैं।

यदि भारतीय संस्कृति पर एक दृष्टि डालें तो चार बातें बहुत ही स्पष्ट हैं। प्रथम, भारतीय संस्कृति प्रगतिशील रही है। द्वितीय, वह असंप्रदायिक है, उसकी अंतरधारा में चिरंतन से सहिष्णुता की भावना का प्रवाह बहता रहा है। अनेक बार सांप्रदायिक वैमनस्य उभरे, उग्र हुए फिर भी उन संप्रदायों ने इस सहिष्णुता की भावना को तिलांजलि कभी नहीं दी। सभी संप्रदाय अंतोगत्वा गंगा की सहायक नदियां ही सिद्ध हुए। तृतीय, भारतीय संस्कृति की भारत के से समस्त इतिहास के प्रति ममत्व की भावना है और चौथी बात है भारतीय संस्कृति की अखिल भारतीय भावना, सहस्त्रों मील की दूरी पर अवस्थित बदरीनारायण, गंगोत्री, काशी, रामेश्वरम, पुरी, द्वारका जैसे तीर्थ स्थानों की भक्ति और प्रेम से यात्रा करना भारत का हर व्यक्ति (वह चाहे जिस प्रांत का निवासी हो) अपना पुनीत कर्तव्य मानता है। स्वभावतः सांस्कृतिक दृष्टि से वे समस्त भारत को अपना देश समझते हैं। आचार्य शंकर ने भारत के चार कोनों पर चार पीठों की जो स्थापना की, उसके पीछे भी यही भावना थी।

*एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, पी.पी.एन. (पी.जी). कॉलेज, कानपुर

© Eureka Journals 2017. All Rights Reserved.

इसी भावना के वशीभूत होकर अयोध्या के राम (गोस्वामी तुलसीदास के राम जो विष्णु के अवतार हैं) रामेश्वरम् में शिव की उपासना करते हैं, 'निराला' के राम रामेश्वरम में शक्ति की उपासना करते हैं।

भारतीय सांस्कृतिक परिवर्तन एवं साहित्य

सामान्यतः संस्कृति के संबन्ध में जब बात की जाती है तब एक गौरव का भाव हमारे मन में उदित होता है। इस गौरव के बोध में जातीय अस्मिता की भावना पीठिका के रूप में सक्रिय होने के कारण एक तरह की विशुद्ध सार्थकता एवं संतोष की तीव्र अनुभूति हम करते हैं। चूँकि भारतीय संस्कृति हजारों वर्ष पुरानी है और काल के प्रवाह में जब अनेक समृद्ध संस्कृतियाँ भी विनष्ट हो चुकी हैं और भारतीय संस्कृति टिकी हुई तब यह गौरवबोध अधिक युक्तियुक्त भी लगने लगता है और यह धारण जाने अनजाने हमें सांस्कृतिक परिवेश, ऐतिहासिक विकासक्रम, सांस्कृतिक जिजीविषा और टिकाऊपन की स्थायी विशेषताएँ कालप्रवाह में विचलित सांस्कृतिक वैशिष्ट्य, चुनौतियों का स्वरूप, आंतरिक तनाव और अंतविरोध आदि के बारे में सोचने से विमुख करती है। वैसे भी संस्कृति से एक जीवंत और दीर्घ परंपरा का बोध जुड़ा हुआ है और इस कारण सामान्यतः हम अतीत से प्राप्त संस्कारों के विचार में अधिक उलझ जातें हैं और सांस्कृतिक प्रक्रिया के वर्तमान स्वरूप को और उसके विभिन्न स्तरों परचल रहे संघर्ष को कुछ नजरअंदाज़करते हैं। वस्तुतः अतीत के सांस्कृतिक स्वरूप को पर्याप्त गहराई से देखा और सोचा गया है-आवश्यकता वर्तमान संदर्भ में सांस्कृतिक स्वरूप को देखने की है। यद्यपि विषय संस्कृति विश्लेषण न होकर हिन्दी साहित्य से संदर्भित करता है कि फिर भी सांस्कृतिक विचार का कुल परिदृश्य देखना आवश्यक जान पड़ता है।

इस में सामान्यतः सांस्कृतिक विषयों पर चिंतन करने वाले मनीषी एकमत हैं कि भारतीय संस्कृति एक सामासिक संस्कृति है और उसने विभिन्न संस्कृतियों को पचाने में और अपने स्वभाव से समन्वित करने में अद्भुत प्रतिभा और लचीनेपन का परिचय दिया है।

किसी का सत्य था,
मैंने संदर्भ में जोड़ दिया।
कोई मधुकोष काट लाया था,
मैंने निचोड़ लिया।
यो मैं कवि हूँ, आधुनिक हूँ, नया हूँ
काव्य-तत्त्व की खोज में कहाँ नहीं गया हूँ?
चाहता हूँ आप मुझे
एक-एक शब्द पर सराहते हुए पढ़ें।
पर प्रतिमा- अरे, वह तो
जैसी आप को रुचे आप स्वयं गढ़े।

उपर्युक्त पंक्तियाँ सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय की नया कविता, आत्म-स्वीकार से उद्धृत हैं। अज्ञेय ने रचना सृजन के दौरान की मनोस्थिति को बहुतही सुंदर तरीके से

© Eureka Journals 2017. All Rights Reserved.

यहाँ अभिव्यक्त किया है। साहित्य का आविर्भाव भी इसी समाज से होता है जिसे रचनाकार अपने भावों के साथ मिलाकर उसे एक आकार देता है। यही रचना समाज के नवनिर्माण में पथप्रदर्शक की भूमिका निभाने लगती है। अज्ञेय मानते हैं कि साहित्यकार होने के नाते अपने समाज के साथ उनका एक विशेष प्रकार का संबंध है- समाज से उनका आशय चाहे हिंदी भाषी समाज रहा हो जो कि उनका पहला पाठक होगा, चाहे भारतीय समाज जिसके काफी समय से संचित अनुभव को वे वाणी दे रहे होंगे, चाहे मानव समाज हो जो कि शब्द मात्र में अभिव्यक्त होने वाले मूल्यों की अंतिम कसौटी ही नहीं बल्कि उनका स्रोत भी है ।

हम पाते हैं कि साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। लोगों को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहाँ एक ओर यह सत्य के सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वहीं असत्य का दुखद अंत कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है। अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता है। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केंद्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिशा-बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ-साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है एवं कालखंड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित कर समाज को संदेश प्रेषित करता है, जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास को गति मिलती है।

साहित्य में मूलत: तीन विशेषताएँ होती हैं जो इसके महत्त्व को रेखांकित करती हैं। उदाहरणस्वरूप साहित्य अतीत से प्रेरणा लेता है, वर्तमान को चित्रित करने का कार्य करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। साहित्य को समाज का दर्पण भी माना जाता है। हालाँकि जहाँ दर्पण मानवीय बाह्य विकृतियों और विशेषताओं का दर्शन कराता है वहीं साहित्य मानव की आंतरिक विकृतियों और खूबियों को चिह्नित करता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि साहित्यकार समाज में व्याप्त विकृतियों के निवारण हेतु अपेक्षित परिवर्तनों को भी साहित्य में स्थान देता है। साहित्यकार से जिन वृहत्तर अथवा गंभीर उत्तरदायित्वों की अपेक्षा रहती है उनका संबंध केवल व्यवस्था के स्थायित्व और व्यवस्था परिवर्तन के नियोजन से ही नहीं है, बल्कि उन आधारभूत मूल्यों से है जिनसे इनका निर्णय होता है कि वे वांछित दिशाएँ कौन-सी है, और जहाँ इच्छित परिणामों और हितों की टकराहट दिखाई पड़ती है, वहाँ पर मूल्यों का पदानुक्रम कैसे निर्धारित होता है?

समाज के नवनिर्माण में साहित्य की भूमिका के परीक्षण से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि साहित्य का स्वरूप क्या है और उसके समाज दर्शन का लक्ष्य क्या है?

© Eureka Journals 2017. All Rights Reserved.

हितेन सह इति सष्टिमूह तस्याभाव: साहित्यम्।

यह वाक्य संस्कृत का एक प्रसिद्ध सूत्र-वाक्य है जिसका अर्थ होता है साहित्य का मूल तत्त्व सबका हितसाधन है। मानव अपने मन में उठने वाले भावों को जब लेखनीबद्ध कर भाषा के माध्यम से प्रकट करने लगता है तो वह रचनात्मकता ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य कहलाता है। साहित्य का समाजदर्शन शूल-कंटों जैसी परंपराओं और व्यवस्था के शोषण रूप का समर्थन करने वाले धार्मिक नैतिक मूल्यों के बहिष्कार से भरा पड़ा है। जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ समान होती हैं। समाज और साहित्य में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। साहित्य की पारदर्शिता समाज के नवनिर्माण में सहायक होती है जो खामियों को उजागर करने के साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत करती है। समाज के यथार्थवादी चित्रण, समाज सुधार का चित्रण और समाज के प्रसंगों की जीवंत अभिव्यक्ति द्वारा साहित्य समाज के नवनिर्माण का कार्य करता है।

साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधारशिला रखता है। इस संदर्भ में अमीर खुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचंद, भारतेन्दु, निराला, नागार्जुन तक की श्रृंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है। व्यक्तिगत हानि उठाकर भी उन्होंने शासकीय मान्यताओं के खिलाफ जाकर समाज के निर्माण हेतु कदम उठाए। कभी-कभी लेखक समाज के शोषित वर्ग के इतना करीब होता है कि उसके कष्टों को वह स्वयं भी अनुभव करने लगता है। तुलसी, कबीर, रैदास आदि ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों का समाजीकरण किया था जिसने आगे चलकर अविकसित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में समाज में स्थान पाया। मुंशी प्रेमचंद के एक कथन को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा,

''जो दलित है, पीड़ित है, संत्रस्त है, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व है।''

प्रेमचंद का किसान-मज़दूर चित्रण उस पीड़ा व संवेदना का प्रतिनिधित्व करता है जिनसे होकर आज भी अविकसित एवं शोषित वर्ग गुज़र रहा है। साहित्य में समाज की विविधता, जीवन-दृष्टि और लोककलाओं का संरक्षण होता है। साहित्य समाज को स्वस्थ कलात्मक ज्ञानवर्धक मनोरंजन प्रदान करता है जिससे सामाजिक संस्कारों का परिष्कार होता है। रचनाएँ समाज की धार्मिक भावना, भक्ति, समाजसेवा के माध्यम से मूल्यों के संदर्भ में मनुष्य हित की सर्वोच्चता का अनुसंधान करती हैं। यही दृष्टिकोण साहित्य को मनुष्य जीवन के लिये उपयोगी सिद्ध करते हैं।

साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह कितनी सूक्ष्मता और मानवीय संवेदना के साथ सामाजिक अवयवों को उद्घाटित करता है। साहित्य संस्कृति का संरक्षक और भविष्य का पथ-प्रदर्शक है। संस्कृति द्वारा संकलित होकर

© Eureka Journals 2017. All Rights Reserved.

ही साहित्य 'लोकमंगल' की भावना से समन्वित होता है। सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियाँ इस संदर्भ में कहती है कि-

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में प्रणय अपार
लोचनों में लावण्य अनूप
लोक सेवा में शिव अविकार।

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक एवं समाज निर्माण की शताब्दी कहा जा सकता है। इस शताब्दी ने स्वतंत्रता के साथ-साथ समाज सुधार को भी संघर्ष का विषय बनाया। इस काल के साहित्य ने समाज जागरण के लिये कभी अपनी पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया है, तो कभी तात्कालिक स्थितियों पर गहराई के साथ चिंता भी अभिव्यक्त की। आठवें दशक के बाद से आज तक के काल का साहित्य जिसे वर्तमान साहित्य कहना अधिक उचित होगा, फिर से अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़कर समाज निर्माण की भूमिका को वरीयता के साथ पूरा करने में जुटा है। वर्तमान साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला है। व्यापक मानवीय एवं राष्ट्रीय हित इसमें निहित हैं। हाल के दिनों में संचार साधनों के प्रसार और सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्यिक अभिवृत्तियाँ समाज के नवनिर्माण में अपना योगदान अधिक सशक्तता से दे रही हैं। हालाँकि बाजारवादी प्रवृत्तियों के कारण साहित्यिक मूल्यों में गिरावट आई है परंतु अभी भी स्थिति नियंत्रण में है।

पश्चिम सभ्यता का भारतीय सांस्कृतिक परिवर्तन में प्रभाव एवं साहित्य

पश्चिम सभ्यता व संस्कृति से प्रभावित होकर 'मॉडर्निटी' को ही एक मूल्य मानने वाले साहित्यकारों की हिन्दी साहित्य में कमी नहीं है। 'मार्डनिटी' के साथ आने वाले गंभीर वैचारिक अनुषंगों को साहित्यकारों ने निश्चय ही बड़े लगाव के साथ अभिव्यक्त किया। स्त्री पुरुष संबंधों के नए आयाम इसी परिणाम है जो आधुनिक कथा साहित्य एवं काव्य के महत्वपूर्ण उपजीव्य है। नारी के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा, इसके विकास के सभी रास्तों की जाँच पड़ताल, उसकी स्वाधीनता की स्वीकृति, पुरुष के समकक्ष उसको मानने की तैयारी आधुनिक साहित्य में अब विचारार्थ विषय नही रहा हे। भले ही कुछ निम्नस्तर पर व्यंग्य और मजाक के लिए नारी की प्रगति का उपयोग किया जाता हो परंतु गंभीर धरातल पर साहित्य में नारी पुरुष की समानता सभी क्षेत्रों में स्वीकृत है। मतलब हे कि उसे अपनी इच्छा के अनुसार किसी पुरुष से प्रेम करने की, किसी के साथ शारीरिक संबंध रखने की या संबंधों को तोड़ने की बात सैद्धांतिक धरातल पर स्वीकृत हो गई है। देह की पवित्रता या यौन के इर्दगिर्द बनने वाली नैतिकता का दायरा अब संकुचित नहीं रहा। प्रेमचंद से लेकर कृष्णा सोबती तक सभी उपन्यासकारों ने नारी-पुरुष की समानता को सभी स्तरों पर स्वीकारा है। आधुनिक साहित्य का एक महत्वपूर्ण वैशिश्ट्य यह है कि यहां नारी-

© Eureka Journals 2017. All Rights Reserved.

पुरुष का प्रणय अब अर्थ में उपभोक्ता-उपभोग्य का संबंध न रहकर दोनों के सहयोग के रूप में चित्रांकित होता है। यह पुरुष का श्रृंगार न रहकर एक समृद्ध जीवनानुभव के रूप में व्यक्त होता है। इसके विविध पहलुओं को जैनेंद्र और अज्ञेय से लेकर निरूपता सेवती तक के कभी साहित्य में उभारा गया है।

पश्चिमी संस्कृति की चकाचैंध से उसमें मिली उन्मुक्तता से प्रभावित होकर भारतीय समाज का ऐसा उच्चवर्गीय तबका केवल दैहिक सुख, भौतिक सुविधाएँ, अधिकार का निरंकुश व्यवहार, और इन सबका आधार अर्थ-संचय आदि बातों को महत्व देता आ रहा है। इसकी अबाध गति में भारतीय घर टूट रहे हैं, बेघर होकर मनुष्य 'थ्रिल' के क्षणों को भोगकर जीवन काटना चाहता है। दिनकर ने 'उर्वशी' के माध्यम से घर टूटने की, मनुष्य के अति अकेले पड़ने की ट्रेजिडी को संकेतिक किया है और गृहस्थ धर्म की प्रतिष्ठा का सुझाव दिया है। कतिपय भारतीय साहित्यकार इस स्थिति का सामना करने वाले स्त्री-पुरुषों का चित्रण कर जिंदगी के अंधेरे बंद कमरों में छिपी नरक यातना का इजहार कर रहे हैं। निर्मल वर्मा के दुखी जीवों की वेदना का कारण भी उनका 'घर' से उखड़ना है। हमारी संस्कृति में यह एक भयावह वास्तविकता पैदा हुई हे। असल में घर से टूटे-उखड़े व्यक्तियों का अकेलापन और दर्द चिरंतन दर्द मानकर चित्रित करने की रूढ़ि भी भारतीय साहित्य में स्थायी होती जा रही है। यह घर टूटने की स्थिति नागर जीवन में अधिक तीव्र रूप में दिखती है। घर जिसमें व्यक्ति न केवल अधिकार से बल्कि कर्तव्य से भी बंधा है और जिसमें अति व्यक्तिवादी स्वातंत्रय की उच्छंखल कल्पनाओं को स्थान न दिया गया तो व्यक्ति के विकास की संभावना भी असीम है, एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में हमारी संस्कृति में और साहित्य में स्थान पा रहा है। यह प्रश्न बुद्धिजीवी व्यक्ति के सामने है कि वह 'व्यक्ति' के रूप में जीना चाहता है या 'गृहस्थ' के रूप में। अमेरिका के चिंतक इस पर पुनः विचार कर रहे हैं। प्रेम और घर की-गृहस्थ जीवन की आवश्यकता को महसूस कर रहे हैं। एक अति वह भी जब भारतीय मनुष्य अपने को समर्पित कर दूसरों के लिए जीने में आदर्श मानता था और एक अति यह है कि जब गति के पीछे सबसे रिश्ता तोड़कर अलग द्वीप के रूप में जीना चाहता है और दुखी भी होता है। दोनों अतिवादों को टालकर घर को बचाने का विकल्प हमारी पास है। मजे की बात यह है कि घर के लिए व्याकुल व्यक्ति भी 'मॉडर्निटी' के गलत चक्कर में आकर साहित्य में व्यक्तिवादी भूमिका ग्रहण करता है।

भारतीय संस्कृति को एवं भारतीय समाज की व्यवस्था को एक गहरा धक्का माक्र्सवादी विचारधारा ने भी दिया है। यह विचारधारा किसी प्रकार के आध्यात्मिक मूल्यों के विपरीत है। किंतु इसमें जो वर्गहीन, विषमताहीन श्रममूल्य पर आधारित आदर्श समाज व्यवस्था का यूटोपिया व्यक्त है वह आखिर उसी रामराज्य के

© Eureka Journals 2017. All Rights Reserved.

आसपास आ जाता है। इस विचारधारा ने सामान्य मनुष्य के प्रति समवेदना ही नहीं जगाई बल्कि व्यवस्था क विविध रूपों में चल रहे शोषण के रूपों को खोलकर सामने रखा। एक तरह से जहाँ तक माक्र्सवाद की 'स्पिरिट' का प्रश्न है किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को उससे विरोध करने का कोई कारण नहीं है।

भारतीय साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा के अनेक रूपों में अभिव्यक्ति हुई है। जहाँ तक जातिभेदविहीन वर्गभेदरहित समाज व्यवस्था की ओर उन्मुखता का प्रश्न है, विषमता और शोषण के विरोध की बात है भारतीय संस्कृति से उसका विरोध नहीं है। यही कारण है कि स्वतंत्र भारत ने इसी उद्देश्य को अपने सामने रखा है और एक जनतंत्र के माध्यम से उस दिशा में हम जाना चाहते हैं। कुछ प्रांतों में कम्युनिस्ट पार्टियों में इसे निष्ठा के साथ स्वीकारा भी है और वे सत्ता पर आई भी है। यह भारतीय सांस्कृतिक सामासिकता ही है जो इन भिन्नभिन्न दृष्टियों को पचा रही है।

निष्कर्ष

असल में भारतीय साहित्य जिस भाषा में लिखा जा रहा है उसकी क्षमता का अनेकमुखी विकास आवश्यक है। दिल और दिमाग की भाषा हिन्दी और रोजी रोटी की भाषा अंग्रेजी का विभाजन हमारी संस्कृति को ही गहरे धरातल तक विभाजित कर रहा है और परिणामतः एक नकली, ऊपरी और दिलदिमाग की ताकत से विहीन ऊपरी सभ्यता का शिकार हमारा ऊपर का तबका हो रहा है। यह खतरनाम स्थिति है। हमें भाषा के रास्ते से सशक्त बनाने का मतलब यह है कि हमारी संस्कृति की भाषा में सभ्यता की भाषा की शक्ति भी समाविष्ट करनी होगी। जब तक ज्ञान की विभिन्न शाखाओं (समाजविज्ञान, मनोविज्ञान, नृविज्ञान, प्राणिविज्ञान, रसायन और पदार्थविज्ञान, गणितविज्ञान आदि) का व्यवहार हिन्दी के माध्यम में नहीं होगा तब तक सही रूप में न हिन्दी विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होगी न संस्कृति की सामासिकता की प्रक्रिया सही रूप में गतिमान और सशक्त होगी। इस संदर्भ में अधिक खतरनाम वर्ग हमारे देश का वह उच्च वर्ग है जो सुविधाभोगी रहा है और अपनी आगे आने वाली पीढ़ी को भी सुविधाभोगी बना रहा है और अंग्रेजी उसका अधिकार कायम रखने में एक औजार बन गई है। इस वर्ग की खतरनाम चाल कितनी शक्तिशाली है यह इस बात से स्पष्ट होता है कि स्वाधीनता के बाद 'इंडियन अंग्रेजी' नामक नई भाषा को स्थापित करने के प्रयास में है और ऐसे सब मुद्दों को जो वे हिन्दी के ख़िलाफ़ उठाते हैं, अंग्रेजी के संबंध में से सुविधापूर्ण ढंग से भूल जाते हैं। यह देशी भाषाओं का अपमान है कि एक नकटी और कुलक्षणी सौत उनके अधिकारों पर आक्रमण कर नाच रही हे। क्या हमारी संस्कृति में इससे मुकाबला करने की क्षमता है? यह अलग से कहने की ज़रूरत नहीं है कि यह मुकाबला हमारी संस्कृति को बचाने के लिए और उसे निरंतर विकासमान रखने की लिए है। असल में हमें इस

© Eureka Journals 2017. All Rights Reserved.

तथ्य को भलीभांति जानना होगा कि हिन्दी के स्वीकार एवं अस्वीकार का प्रश्न अहिन्दीभाषी जनता के स्वीकार पर निर्भर है किंतु जबतक हिन्दी विज्ञान की सभ्यता को पचाकर अपनी सामासिक शक्ति का सही परिचय नहीं देगी तब तक भारतीय संपर्क भाषा के रूप में भारत में और एक शक्तिशाली भाषा के रूप में विश्व में समादृत नहीं होगी। संस्कृति केवल अतीत की ओर और परंपरा से प्राप्त जड़ वस्तु नहीं होती, उसे वर्तमान में गतिशील बनाने का कार्य बुद्धिजीवियों का ऐतिहासिक दायित्व है। क्या हमारा बुद्धिजीवी वर्ग अंग्रेजी से बुरी तरह प्रभावित सुखवादी उच्चवर्ग का भाषा के माध्यम से सामना कर सकेगा?

भारतीय साहित्य को अपनी उदार सामासिक शक्ति का परिचय एक और दिशा में देना है। भारतीय साहित्य केवल हिन्दी भाषाभाषियों का साहित्य नहीं रहा। अहिन्दी भाषी भारतीय एवं अभारतीय भी साहित्य की सेवा कर रहे हैं। कुछ विद्वानों ने तो ऐसा काम किया है या कर रहे है कि उनके कृत्तिव को देखकर आश्चर्य होता है। इनके कार्य की जाने अनजाने अगर उपेक्षा हो रही हो तो भारतीय साहित्य उज्ज्वल भविष्य की दृष्टि से न वर्तमान से उचित है, न भविष्य में वह समीचीन माना जाएगा। हिन्दी भाषियों को इस सेवा के प्रति विशेष रूप से सजग रहना चाहिए। भारतीय भाषाओं की अत्युत्तम सामग्री को रूपांतरित कर हिन्दी में लाने के लिए जो प्रयास चल रहे हैं वे सचमुच सराहनीय है। जो कार्य आज अंग्रेजी में विश्व साहित्य में सदियों से हो रहे हैं वही साहित्य को भारतीय भाषाओं के संबन्ध में विशेषतः और विश्व की भाषाओं के संबंध में सामान्यतः करना होगा। आज रूसी, फ्रेच, जापानी, चीनी लेखकों की अच्छी पुस्तकें अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ने को मिलती हैं। वह दिन कब आएगा जब भारतीय भाषाओं यह कार्य करने लगेगी और अंग्रेजी की ज़रूरत हमारे लिए नहीं रहेगी? इसके दुनिया की प्रगत भाषाओं को एक व्रत के रूप में साहित्य प्रेमियों को सीखना होगा। अगर भारतीय भाषा प्रेमी प्राध्यापक अपने विषय की एक बहुत अच्छी पुस्तक अनूदित कर लाने की प्रतिज्ञा करेगा तो साहित्य की सामासिक शक्ति अद्भुत प्रभाव पैदा कर सकती है।

आज आवश्यकता है कि सभी वर्ग यह समझें कि साहित्य समाज के मूल्यों का निर्धारक है और उसके मूल तत्त्वों को संरक्षित करना जरूरी है क्योंकि **साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुंदर अभिव्यक्ति है।**

संदर्भ सूची

1. भारतीय साहित्य की पहचान, लेखक-सियाराम तिवारी।
2. भारतीय साहित्य की अवधारणा, लेखक-प्रो ऋषभ देव शर्मा।
3. भारतीय साहित्य की भूमिका, लेखक-डॉ रामविलास शर्मा।

© Eureka Journals 2017. All Rights Reserved.

4. प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास, लेखक-एम् विण्टरनिट्ज।
5. साहित्य और सांस्कृतिक एकता, साहित्य और सांस्कृतिक एकता, लेखक-बालशौरी रेड्डी।
6. भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, लेखक-डॉ रामविलास शर्मा।
7. भारतीय साहित्य, सम्पादक-मूलचंद गौतम
8. युग के माध्यम से भारतीय साहित्य, सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र।

© Eureka Journals 2017. All Rights Reserved.